बालब्रह्मचारिण्याः श्रीमत्याः कुसुमवत्याः सत्याः यशःसौरभम्

संसारजीवजगतः परमंहितेच्छुम्, मोक्षेच्छुकं प्रकृतिहेतुजनेर्विरक्तम् ।
ज्ञानात्मदेहविषये हृतसंशयं तम्, वन्दे गुणातिशयितं भुविवर्द्धमानम् ।।
नमाम्यहं सोहननामधारिणीम्, सतीं महिम्नां सकलागमश्रियम् ।
सतां समूहेऽप्यमितप्रभाविनीम्, दयैकदृष्टिं श्रितशुक्लवाससम् ।।१।।

अर्थ—श्वेताम्बर स्थानकवासिनी जैन साध्वी महिमाओं की सती श्री सोहनकुंवरजी महाराज, जो सब आगमों की शोभा थीं, मुनिराजों में भी जिनकी धाक थी, जिनकी दया ही शरण थी, उनको मैं नमन करता हूँ।

नमस्कृतिर्मे प्रथमा स्वभावतः, यतो हि गुर्वीयमतोऽपि युज्यते ।
वदामि यस्या यशसः कथानकम्, भवेदहो मङ्गलमेव मङ्गलम् ।।२।।

अर्थ—स्वभाव से मेरा नमस्कार, इसलिए भी है कि ये मेरी गुरु थीं। और इसलिए भी कि मैं जिन सतीजी के यश की कहानी कह रहा हूँ, उनकी भी ये गुरु हैं, जिससे कि मंगल ही मंगल हो।

वहामि तस्याः शिरसाऽप्यधोमुखः, सदोपदेशामृतपूर्णमुत्तटम ।
घटं ततोऽहं कथयामि मातरम्, वदेयुरन्ये किमपीह दुर्वचम् ।।३।।

अर्थ—उन सतीजी महाराज के उपदेशामृत से भरे हुए और उठाए घड़े को लज्जित हो, ढो रहा हूँ, यही कारण है कि मैं सतीजी को माता कहता हूँ, फिर चाहे कोई कितना ही बुरा कहे।

तस्याः पुनश्चान्यतमा भवेदियम्, सतीषु धन्या कुसुमाभिधायिनी ।
ममा तु तस्याः समुदीर्यते यशः, यथास्मृति ध्यानपरेण चेतसा ।।४।।

अर्थ—उन्हीं की अनेक सतियों में से ये श्री कुसुमवतीजी सती हैं, इनके यश तो बहुत हैं किन्तु मुझे जो सूझते जाते हैं, उन्हीं को मैं कहता हूँ।

अबोध एवाहमतोऽपि निर्भयः, गदामि मत्याकलितं सुनिर्भरम् ।
अतो न जिह्रेमि कवेर्गुणादहो, न शङ्कते मे हृदयं विकत्थने ।।५।।

अर्थ—क्योंकि मैं नासमझ हूँ, इसलिए मुझे कोई डर नहीं लगता, अतः जैसा समझ में आता है, वैसा ही खूब कहता जाता हूँ। इसलिए कवियों की मर्यादा छोड़कर वर्णन करने पर भी नहीं झेंपता। यहाँ तक कि डींग मारने पर भी हृदय घबड़ाता नहीं है।

श्रद्धेयाया महत्या धवलवसनाच्छादिताया हि सत्याः,
श्रीमत्याः सोहनायाः कृतघनतपसो मुक्तिमार्ग-प्रयात्र्याः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिष्येयं शान्तवृत्तिः परमशुभगतिजनधर्मागमश्रीः,
व्याख्यात्रीषु प्रसिद्धा पुनरतिसरला काऽप्यनन्या सतीषु ।।६।।

अर्थ—स्थानकवासी श्वेताम्बर जैन महासती घोर तपस्विनी श्रद्धेय श्री सोहनकुंवरजी जो अब स्वर्गीय हैं, ये परम मांगलिक जैनधर्म के आगमों की शोभा, प्रसिद्ध व्याख्यात्री, अत्यन्त सरल और सतियों में बेजोड़ ही हैं।

साऽसौ नाम्ना सुशीला कुसुमसुषमा राजते जैनभूमौ,
जानाम्येवं सुखेन प्रगुणियशसां वृन्दतोऽह सतीनाम्।
तस्मादन्ते गुणानां गणमपि सहसा वक्तुमस्म्येव तस्याः,
सत्याः सौम्यस्वरूपं ज्ञपयति तरसा भावधुर्यं महत्वम् ।।७।।

अर्थ—जैनजगत् में सुशील, वही यह कुसुम नाम की परम शोभा झलक रही है, यह मैं पूज्य सतियों के मुख से ही ऐसा सुनता हूँ। इतना कहने पर भी कुछ गुणों को और कहना चाहता हूँ, जिनसे इन सतीजी का उज्ज्वल और पावन रूप शीघ्र ही समझ में आ जाता है।

एतत्सत्यं प्रकृष्टं प्रथमवयसि स्यामहं शिक्षकोऽस्याः,
सत्यावृत्तिं विचेतुं कथमपि समयं दातुमिच्छुर्भवेयम्।
कालेऽज्ञास्यं महत्वं तदपि तु कठिनं मन्दबुद्धेर्ममेदम्,
कृत्यं जातं कठोरं स्मरति यदि मनो लज्जते मामकीनम् ।।८।।

अर्थ—एक सच्ची बड़ी बात यह है कि जब ये छोटी आयु में ही थीं, इनका शिक्षक बन, इन को समझने के किसी प्रकार समय निकालकर पहुँचा। मेरी यह मूर्खता ही थी, क्योंकि मैं रीति-नीति से अपरिचित था। आगे चलकर बड़प्पन को समझा भी कि नहीं, यह तो समझने की बात है, अध्यापन के समय बड़ा कठोर व्यवहार हुआ। जब कभी मैं उस कठोर व्यवहार को याद करता हूँ तो मन में बड़ा लज्जित होता हूँ।

स्मृत्वा सर्वं त्वकृत्यं कथमपि वचनैर्यद्यहं वर्णयेयम्,
हर्षं मत्वा सदेयं कथयति सुसती तद्धि जातं हितार्थम्।
सम्प्रत्येवं महत्वं किमपि सदसि यद् वर्त्तते सत्फलं तते,
दैन्यं मन्स्ये न चित्ते न किमपि मनसेः कल्पनौचित्यमास्ते ।।९।।

अर्थ—यदि मैं स्मरण कर उस कठोर व्यवहार को कभी कहता हूँ तो हर्ष मानकर पावन सती जी कहती हैं कि वह कठोर व्यवहार तो बड़ा हितसाधक हुआ है। जो भी कुछ महत्त्व आज सभा में माना जाता है, वह सब उसकी बदौलत है। मैं तो उसको हृदय में बुरा नहीं मानती। इसलिए आपका ऐसा कहना उचित प्रतीत नहीं होता।

सत्यं वच्म्येव वृत्तं न हि मम मनसः कल्पनेयं नवीना,
सत्यः सर्वाः प्रवीणा अपि बहुगुणिताः सन्ति सद्धेऽपि सत्यः।
वैदुष्याभारनम्राः किमपि तु कथितं पालयन्त्येव वाचम्,
सत्या वृत्तिं सदैताः फलयितुमनसश्चिन्तिका एव सर्वाः ।।१०।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ—सच बात कहता हूँ, यह कोई मेरे मन की बात नहीं है। आज इन सतीजी के संघाड़े में सभी सतियाँ अत्यन्त योग्य और महाविदुषी हैं। विद्वत्ता के बोझ से झुकी हुई वे जो सतीजी फरमाते हैं, उसका वे उसी समय पालन करती हैं, साथ ही ये सतियाँ हृदय में सोचती हैं कि उनके कहने से पहले ही कार्य हो जाना चाहिए।

नाहं वक्तुं यथार्थं परमपि सततं रूपमेतत्स्वतोऽस्याः,
मिथ्याचारादिमग्नः कथयति रचितं लौकिकं कार्यमेकम्।
तस्मान्मन्ये ममेदं कथनमपि तदा केवलं सारहीनम्,
जानीयुः केऽपि सन्तः परमपदरता ध्यानमग्ना महान्तः ॥११॥

अर्थ—वास्तव में, मैं सतीजी के असली रूप को तो बता नहीं सकता (क्योंकि मुझ में इतनी योग्यता नहीं है) किन्तु झूंठ आदि में फँसा मैं दुनियावी कामों को ही गिना सकता हूँ। इसलिए मैं मानता हूँ कि यह सब मेरा कथन सारहीन ही है। किन्तु मोक्षार्थी तत्वज्ञ मुनिजन मेरे इस ऊटपटांग वर्णन से कुछ तो अर्थ निकाल ही लेंगे।

यद्यप्यस्या गुणानामतिशयमपरं वक्तुमिच्छाम्यपारम्,
ध्यानं तावन्मदीयं व्यथितजनकथावन्मामकीनं विपन्नम्।
भ्राम्यत्येवं कथायाः झटिति मम मनश्चञ्चलत्वाद् गुणेभ्येः,
हेतुर्नान्योऽस्ति कश्चित् सकलगुणमहिम्नः शीलशुक्लोम्बरायाः ॥१२॥

अर्थ—यद्यपि मैं सतीजी के गुणों के अपार महत्व को कहना चाहता हूँ, तब तक मेरा कहना—करना रोगी की कहानी के समान गड़बड़ा जाती है। कहना चाहता हूँ कुछ, कह जाता हूँ कुछ, क्योंकि मेरा मन मुझको धोखा देता है। अतः गुणों की बात कह नहीं पाता। कारण इसका यही हो सकता है कि शीलशुक्लाम्बरधारी सतीजी महाराज स्वयं ही ऐसी हैं कि मैं कुछ कह ही नहीं पाता।

सत्याश्चास्या गुणानां परिचितिरपरा बाधिका वर्त्तते मे,
स्वल्पायुष्ये सतीयं परमगुणवती दीक्षितासीज्जनन्या।
सार्धं देव्या महत्या विमलगणधरे पुष्कराचार्य संघे,
दिव्योत्कर्षप्रतिष्ठे परमगतियशः शोभिते सन्मुनीन्द्रे ॥१३॥

अर्थ—दर असल छोटी सी उम्र में ही इन सतीजी ने अपनी पूज्य माताजी के साथ ही परम-यशस्वी अध्यात्मयोगी मोक्षमार्गी परम प्रसिद्ध सन्मुनीन्द्र गुरुवर श्री पुष्करमुनिजी के संघ में दीक्षा ग्रहण करली थी, तभी से परिचित होने के कारण में इन सतीजी को जानता भर हूँ, किन्तु इन्होंने इतनी उन्नति कर ली है कि मैं अब इन सतीजी के महत्व को नहीं पहचानता। क्योंकि तपस्या से व्यक्ति कुछ का कुछ हो जाता है।

तस्यैवेयं सतीनां शुभमतियशसां सुप्रसिद्धा गणश्रीः,
नेयं शिष्यैव लोके परमगणधरा शिक्षितानां सतीनाम्।
दिव्याभानां सुरत्नं सुविमलयशसां राजते तीर्थरूपा,
दृष्ट्वा सत्योऽपि चान्याः स्वयमतिविमलाः स्पर्द्धमाना यतन्ते ॥१४॥

अर्थ—तपःसिद्ध अध्यात्मयोगी श्री पुष्कर मुनि गुरुदेव, उनकी पवित्र बुद्धि और यशवाली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सतियों के समुदाय में प्रख्यात गणधरा अब शिष्या नहीं, अपितु प्रसिद्ध सतियों में चमकता रत्न है, सुप्रसिद्ध सतियों में गुरु के तुल्य शोभित है। इन सतीजी को देखकर अब अन्य सतियां भी जो अपने ज्ञान और गुणों से विमल हैं, वे भी अब स्पर्धा के लिए यत्न करती हैं।

श्रद्धाधर्मोज्ज्वलार्चिः प्रतिदिनमपरं व्यापृतं जैनसंघम्,
धर्मश्रद्धातिरेकं परहितविषये दृष्टिदानाय नित्यम्।
सम्प्रेर्याधिक्षयार्थं श्रुतरसरचितं मार्गमेवोद्गिरन्ती,
श्रेष्ठं मत्वा सतीयं सुलभहितपरे राजते वाक्यवृन्दैः ॥१५॥

अर्थ—श्रद्धा और धर्म की झिलमिलाती अग्नि की लपट ये सतीजी प्रतिदिन जैन जनों, जो धर्म और श्रद्धा का आधिक्य रखते हैं, उनको सदा परोपकार के लिए उपदेश करती रहती हैं। मार्मिक व्यथाओं के दूर करने के लिए शास्त्रों के तत्त्व को श्रेष्ठ मानकर समझ में आ सके ऐसे वचनों से उद्बोधन करती हुई सोहती हैं।

जानाम्येनां सुशीलां सततगुणमयी शिक्ष्यमाणां सदाऽहम्,
स्वामोन्नत्यै प्रयातां सरलसुवचनैरुत्तरैर्बोधयन्तीम्।
स्मृत्वा सर्वं नितान्तं त्यजति मम मनः क्रूरवृत्ति मदीयाम्,
जिह्वेम्यद्य स्वतोऽहं कटुविषवचनैः किन्तु शिक्षात्यगम्या ॥१६॥

अर्थ—जो मुझसे व्याकरणादि सीखी हुई, इस सुशील गुणवती सतीजी को जानता अवश्य हूँ, क्योंकि ये अपने को उन्नत करने के लिए सीधे-सादे उपदेशों से ज्ञान बखेरती हुई, आज परमपद से शोभित हैं, और मैं जहाँ था वहीं हूँ तथा अब मैं अपने उन तीखे वचनों का स्मरण कर पछताता हूँ और शरमाता हूँ, किन्तु शिक्षा कठिनता से प्राप्त होती है, करता भी तो क्या ?

यद्यप्यस्याः स्वभावे सहजमुपकृतेश्चित्रमेतन्नवीनम्,
पश्यामीत्थं विलक्षः किमपि तु वचनैर्वक्तुमीशो भवेयम्।
माहात्म्यं चाप्यपूर्वं विरलमधिकृतेर्दिव्य—रूपं त्वलभ्यम्,
संसारी कामचारः कथमपि विमलं तत्त्वमाप्तुं कथं स्याम् ॥१७॥

अर्थ—किन्तु स्वाभाविक उपकार करने के नये दृश्य को देखकर तो मैं अब अचम्भे में गिर पड़ता हूँ कि किस प्रकार मैं ऐसी शक्ति प्राप्त करूँ जैसी कि सतीजी ने प्राप्त कर ली है। किन्तु मैं गृहस्थी और असंयमी रहकर क्या ऐसा दृश्य उपस्थित कर सकता हूँ।

मानं त्वस्या वदेयं किमिति पुनरहो वर्णने सन्ति सत्यः,
यासां कीर्तिदिगन्ते प्रसरति भुवने सत्प्रभावैरजस्रम्।
वैदुष्यञ्चाप्यपूर्वं दिशि दिशि बहुधा दीप्तिमद्देशनायाम्,
श्रुत्वा सर्वे विमुग्धा गुणिजनसकला संति सद्योऽद्यभूमौ ॥१८॥

अर्थ—इन सतीजी में मान जैसी तो कोई बात ही नहीं है। इनके अतिरिक्त अन्य पवित्र गुणवती सतियों को भी देखता हूँ कि जिनके दिव्य प्रभाव के सामने श्रावक ठहर नहीं पाते, किन्तु इनके व्याख्यान को सुनकर श्रावक जमे के जमे ही रहते हैं, उठने का नाम ही नहीं लेते।

जानन्त्येतज्जगत्या जिनवरमुनयो रक्षका जीवयोनेः,
कष्टं लब्ध्वाऽपि लोके हितकरवचनैः शिक्षयन्त्येव सत्यम्।
लोकाः सर्वे विमुग्धा परहितविमुखाः स्वार्थिनो भोगवृत्तेः
किं जानीयुर्महत्त्वं जगति धनरताः सन्मुनीनां कथानाम् ॥१९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ—कष्ट उठाकर भी जिनमुनिजन जीव जाति की रक्षा करते हैं, सत्य को कष्ट सहकर भी सिखाते हैं, किन्तु स्वार्थी संसारी, धन के लोभी मनुष्य ऐसे मुनियों का वास्तविक स्वरूप कैसे जान सकते हैं।

एते सर्वे विरक्ताः परमसुमतयो मुक्तिमार्गप्रसक्ताः
एवं सत्योऽप्यनेका विहृतिपरवशा जैनधर्मं वहन्त्यः।
लोकान् भोगानुरक्तान् विकृतिरसयुतान् हिंसकान् बोधयन्त्यः,
भिक्षावृत्ति दधत्यो जनजनविषये संति धन्या महत्यः ॥२०॥

अर्थ—किन्तु फिर भी उपकारी मुनिजन इन हिंसक मनुष्यों को समझाते ही रहते हैं। इसी प्रकार सतीजन भी उन सबको समझाती रहती हैं। यह जैनधर्म का विस्मयकारक महत्व है।

दृष्ट्वाऽप्येवं विरक्तान् जिनवररसिकान् सन्मुनीन्द्रा जगत्याम्,
भोगासक्तास्तु लोकाः कलहविषरता भुञ्जते पापभोगान्।
कुर्युः किं ते मनुष्याः परहितविषये नामधर्मस्य नीतौ,
सिद्धि सम्प्राप्य कांचित् परजनसुकरं जैनधर्मं वहेयुः ॥२१॥

अर्थ—इतने पर भी ये संसारी मनुष्य लड़ाई-झगड़ों में लगे रहते हैं, इन पावन मुनियों के उपदेश को ग्रहण नहीं करते और पाप कमाते रहते हैं, किन्तु कुछ मिल जाने पर उसी में प्रसन्न रहते हैं और सत्य की उपेक्षा करते हैं।

ज्ञात्वा सर्वं रहस्यं मनसि मम पुनर्जायते काऽपि शङ्का,
रागांस्त्यक्त्वाऽपि सर्वान् कथमिह मुनयः पालयेयुः स्वकीर्त्तिम्।
कीर्त्तेर्लुब्धा मुनीन्द्रा यदपि सुतपसः संति केचित् पृथिव्याम्,
आनीयुः केऽपि लोके परमहमखिलं मूढचेता न जाने ॥२२॥

अर्थ—परन्तु सब कुछ त्यागने पर भी मुनिजन कुछ ऐसे भी हैं कि वे अपनी कीर्त्ति की लालसा रखते हैं, यह देखकर मैं आश्चर्य में डूब जाता हूँ, किन्तु इसका उत्तर सुनकर भी मैं ऐसा मूर्ख हूँ कि उनके समाधान पर भी मेरी समझ में कुछ नहीं आता।

दृष्ट्वैतन्मानसेऽहं सुविमलतपसं तापसीं सत्यरूपाम्,
मिथ्याश्लाघामयेऽस्मिन् मुनिजनविमले केवलां कोमलां त्वाम्।
स्तूयाल्लोकेऽधुना कः सरलगतिरतिं चिन्तयेयं सदैवम्,
श्रद्धां बध्वाऽप्यधीरो मुनिजनकमलं वीरदेवं भजेऽहम् ॥२३॥

अर्थ—यह सब देखकर मैं अपने मन में, पवित्र तपस्विनी सच्ची साध्वी आपकी, केवल सीधी मुनिजनों के विमल मिथ्याश्लाघामय संसार में, सीधी गति पर प्रेम रखने वाली की, कौन प्रशंसा करेगा ? ऐसा मैं सदा उधेड़-बुन में लगा रहता हूँ। अतएव मैं घबड़ाकर श्रद्धा को बाधकर वीर प्रभु की आराधना करता रहता हूँ।

आश्चर्यं वर्त्तते मे मनसि हृतजगत् जैनधर्मस्य साधुः,
सर्वं त्यक्त्वाऽपि भूमौ यशसि परिगतः साधकः सर्वथाऽयम्,
जाने सर्वं रहस्यं तदपि गुणमयं वृत्तमस्त्येव लोके,
तस्मान्मन्ये सदाऽह किमपि तु जगतः कारणं तद् विचित्रम् ॥२४॥

अर्थ—मेरे मन में आश्चर्य होता है कि सर्वत्यागी जैनधर्म के मुनिराज संसार छोड़कर भी इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृथिवी पर यश में लिप्त होकर यह साधक है। यह भी गुणमय रहस्य सब मैं जानता हूँ, यह सब दुनिया में चलता है। इसलिए मैं मानता हूँ कि जगत् का कारण अनोखा है।

निर्लज्जोऽहं वदेयं सदसि मुनिजने लोकलीलासमाप्ते,
मिथ्याश्लाघाभिलाषे पुनरियमधुना निःस्पृहो दृश्यतेऽन्ते।
तत्त्वज्ञानी मनुष्यो भवति मुनिजनान् वन्दते स्वेच्छया यः,
भक्त्या तेषां गुणानां कथयति बहुधा पद्यवृन्दे महत्त्वम् ॥२५॥

अर्थ—लोकलीला समाप्त करने वाले मुनिजन पर, जो कि झूठी डींग की चाह रखते हैं, जैसा कि वह अन्त में निस्पृह दिखता है, उसको ज्ञानी तो अपनी इच्छा से वन्दना करता है और कविता में उनके गुणों की प्रशंसा करता है, ऐसा मैं देखता हूँ।

अन्ते भक्त्यैव सत्याः सुकुसुमसुरभे नामवत्या भगिन्याः,
मातुः कैलाशवत्या गुणगणनिचयं यावदन्तं स्मरेयम्।
नामं नामं यशोभ्यः सकलगुणभृतः पुण्यरूपं मदन्तः,
नृत्यत्येवं सहर्षं किमु कृतिवचनैः प्रेर्यमाणो जनोऽयम् ॥२६॥

अर्थ—अन्त में, मैं सतीजी के प्रति भक्ति से, प्रशस्त खिले हुए पुष्पों की गन्धवाली नामवाली सतीजी जो मेरी बहिनजी हैं, क्योंकि स्वर्गीय कैलाशवतीजी, जो मेरी माता थीं, उनकी आप पुत्री हैं, अतः मैं आपको बहिनजी कहता हूँ, क्योंकि मेरा मन उनके गुणों को यावज्जीवन याद करता रहेगा। अच्छे गुणों की माता कैलाशवतीजी के यशों के लिए झुक-झुक कर मेरा मन नाचता रहता है। अधिक क्या कहूँ, मैं तो एक विवश सा हूँ।

सत्या दिव्यप्रभाया मृदुतमवचनैः प्रेरितं मेऽपि चित्तम्,
कीर्त्तेर्मुग्धं सदेदं रसमयकथनेश्चिन्तयित्वा गुणौघम्।
स्मृत्वा स्मृत्वा कथञ्चिल्लिखति मतिमयं पद्यवृन्दं विचित्रम्,
विद्वल्लोके प्रशस्तं कथमपि प्रभवेन्नास्ति चिन्ता ममेयम् ॥२७॥

अर्थ—सतीजी श्री दिव्यप्रभाजी महाराज के अत्यन्त मृदुवचनों से प्रेरित हुआ मेरा मन भी जो सदा कीर्तिलोभी और खुशामदी बातों से गुणों को सोचविचार और बार-बार याद कर एक ऊटपटाग पद जैसे मनगढ़न्त कुछ लिख रहा हूँ। यह विद्वज्जन को अच्छा लगेगा कि नहीं, यह तो मुझे चिन्ता ही नहीं है। (क्योंकि मैं जानता ही क्या कहूँ!)

सत्यं बुध्यामि लोके कुसुमवति हे धर्मपूज्ये वदान्ये।
वक्तु वाणीं न जाने तदपि तव कथामिङ्गितेन ब्रवीमि।
तत्त्वज्ञात्री दयायास्त्वमसि बहुतो भावमुग्धाऽप्यनन्या,
कोऽसि श्चिन्ता न तेऽन्तर्विहरति भुवने जैनधर्मं स्तुवन्ती ॥२८॥

अर्थ—ए धर्मपूज्य! विदुषि! कुसुमवति! मैं यदि ठीक समझता हूँ अथवा जानता हूँ तो मैं वर्णन करना भी नहीं जानता, फिर भी मैं कुछ आपको इशारे से बताना चाहता हूँ। दया के तत्त्व की जानकार भावमुग्ध आप अकेली ही हो, जैनधर्म की स्तुति करती हुई निश्चिन्त विहार करती रहती हो।

भूदेवोऽयं विपन्नः स्मरति यदि कदा कर्कशत्वं स्वकीयम्,
शिक्षादाने प्रवीणो रहसि तव धृति लज्जते सर्वथाऽन्तः।
चर्चावाचां प्रकुर्वे हससि बहुतरं तस्य मूलं यशस्ते,
तस्मान्मन्ये स्वसारं जगति मनुजता सर्वथा पालनीया ॥२९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ—मैं भोंदू दुखियारा ब्राह्मण घटित अपनी कठोरता को जब कभी यदि याद करता हूँ, पढ़ाने-करने में चतुर होते हुए भी आपके धैर्य का स्मरण कर मेरा हृदय बहुत लज्जित होता है। जब कभी मैं आपके सम्मुख इसकी चर्चा वाणी करता हूँ तो आप यही कहती हैं कि यही तो आपकी प्रशंसा की जड़ है, यह कहकर हँसने लगती हो। यही कारण है कि मैं आपको बहिन मानता हूँ। संसार में मानवता सभी तरह पालनी चाहिए।

अन्तेऽप्यज्ञः कृतज्ञो मृदुतमवचनां सोहनां मातरं मे,
जैनो भक्तः सतीं तां वदति वदतु मे काऽपि हानिर्न मन्वे।
नाहं मन्ये कृतघ्नं स्वमतिशयतमं वच्मि भावेन मेऽन्तः,
लोके रीतिः सदेयं जनयति जननी किन्तु धर्मेण माता ॥३०॥

अर्थ—आखिर मैं नासमझ, किन्तु अत्यन्त कोमल वचनों वाली स्वर्गीय सोहनकुँवर सतीजी को मैं माता मानता हूँ। श्रावक उनको सतीजी म० मानते हैं या कहते हैं, इससे मेरी कोई हानि नहीं है। वस्तुतः मैं अपने आपको कृतघ्न नहीं मानता, अतएव माता कहता हूँ। यों तो संसार में जो जन्म देती है, वही माता कहलाती है और धर्म से सभी स्त्रियाँ माँ-बहिनें हैं।

किमिति कविरहं वर्णयेयं कथञ्चित्,
सरलपदमयं सारशून्यं विचित्रम्।
तदपि मम मते काव्यमेतत्सु भावम्,
वहति किमपि हृद्यं बालवाचोऽप्यसारम् ॥३१॥

अर्थ—क्या जैसे-तैसे अर्थहीन ऊटपटांग कुछ वर्णन कर लेता हूँ इससे मैं कहीं कवि नहीं हो सकता ! परन्तु अर्थहीन तुतलाती बोली से बच्चा बोलता है, उसे सुनकर जैसा आनन्द आता है, ठीक वैसे ही मेरी कविता से आपको आनन्द आता है, ऐसा मैं कवि हूँ।

न किमपि मम पद्यं वर्त्तते काव्यतुल्यम्,
तदपि यदि लिखेयं साहसं मे क्षमायाः।
रस-गुण-कवितायास्तत्त्ववेत्तुः कवेस्तत्,
प्रहसनमिव चित्तो मोदयत्येव चित्तम् ॥३२॥

अर्थ—मेरी कविता कोई कविता नहीं है, किन्तु आप मुझे क्षमा प्रदान कर देंगे, इसलिए मुझे कुछ लिखने का साहस हो जाता है। रसीली कविता के जानकार कवियों के लिए तो यह मेरी कविता 'प्रहसन' के समान है। कुछ तो कवियों दिल में अच्छा लगता होगा।

कथयति यदि पद्यं व्यंगसंगेन नित्यम्,
तदपि न पुनरन्तस्तोषमाप्नोति हृद्यम्।
रचयति पुनरेवं शंकरोऽयं रमायाः,
कविरपि सुशकोऽर्थः संगतः किन्तु स्वप्ने ॥३३॥

अर्थ—यदि कोई कवि सव्यंग पद्य कहता है तो वास्तव में हृदय को प्रिय सन्तोष प्राप्त होता है, यह जानते हुए यदि लक्ष्मी का शंकर अर्थात् भला चाहने वाला रमाशंकर कवि का सही अर्थ हो सकता है, किन्तु यह सब स्वप्न में ही संगत हो सकता है, जगते हुए संसार में कभी नहीं हो सकता। ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org